ग्राफ़िकीय संचार

सूची

लिपि का विकास

प्रतिलिपि मुद्रण के विकास की अवस्थाएँ

धातु की चल टाइप से डिज़िटल इमेजिंग तक

इकाई III

ग्राफ़िकीय संचार की तकनीकें

ग्राफिक डिज़ाइन की सरल परिभाषा यह है कि यह विभिन्न तकनीकों और माध्यमों के द्वारा विकास और विचारों को प्रवर्तित करने के लिए संचार का प्रयोग है। अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो यह सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए दृश्य संचार के सौंदर्यपरक सिद्धांतों, प्रक्रियाओं और कार्य नीतियों को व्यवस्थित रूप से कार्यान्वित करने की पद्धति है। सूचना के प्रसार द्वारा समस्या का समाधान खोजने के लिए प्रयोग में लाई गई संचार की विभिन्नता और संकल्पनात्मक लचीलापन संचार की विशेषताएँ हैं।

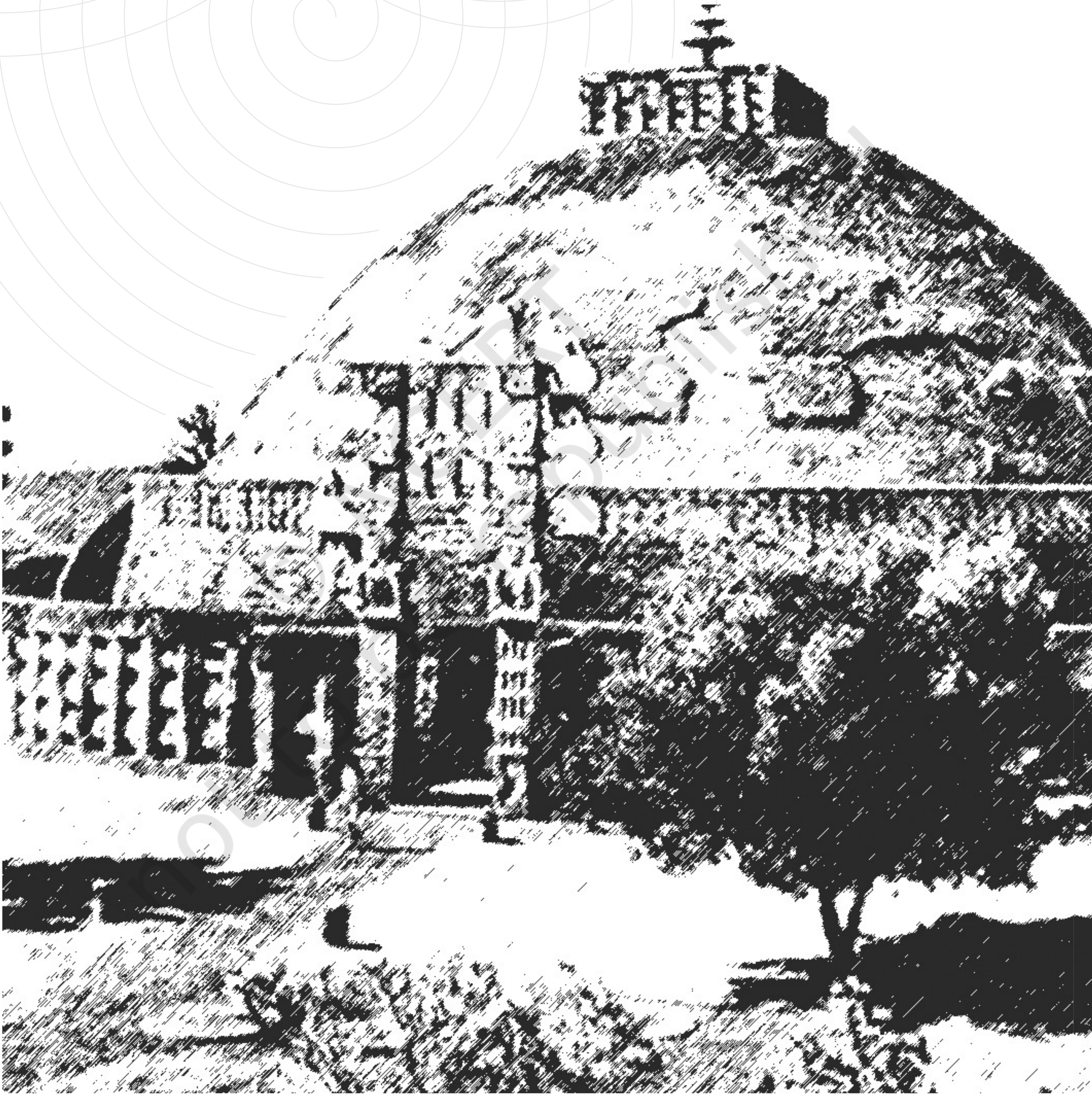

6
अध्याय

लिपि का विकास

सभ्यता के इतिहास में सूचना प्राप्त करने के लिए पुस्तकें, पत्रिकाएँ और अन्य साधन हाल में विकसित हुए हैं। प्रागैतिहासिक मानव संसार के ऐसे दृश्य साधनों से कई सदियों तक वंचित रहा था। फिर भी, मनुष्य का मन-मस्तिष्क उसे अपने आस-पास के परिवेश के बारे में जिज्ञासु बनाए रखता था। उसकी उस जिज्ञासा ने उसे दूसरे के साथ आचार-व्यवहार करने, विचारों का आदान-प्रदान करने और उन्हें अपने मन की बात कहने के तरीके खोजने को मजबूर किया। इस आकांक्षा के फलस्वरूप विकसित संकेत भाषा संभवत: संचार या अभिव्यक्ति का पहला तरीका था जिसे आदिकालीन मानव ने अपनाया था। लेकिन संकेत भाषा मनोभावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त नहीं थी। मनुष्य ने अपने विचारों के अभिलेखन तथा परिरक्षण के लिए कोई और तरीका खोजना चाहा। उसके ये प्रारंभिक प्रयत्न अपरिपक्व और अपरिष्कृत थे और वे विस्तृत सूचना देने में समर्थ नहीं थे।

अत: आगे चलकर, स्मृति सहायकों और चित्र-लेखन का विकास हुआ। इससे मनुष्य अपने कार्यों तथा अभिव्यक्तियों का संकेत भाषा की तुलना में, कहीं अधिक सही रूप प्रस्तुत करने में समर्थ हो गया। अतिप्राचीन काल में मनुष्यों के अनुभव और उनकी ऐतिहासिक तथा धार्मिक परंपराएँ आख्यानकर्ताओं द्वारा मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित की जाती रहीं। लेकिन समाज पूर्ण रूप से किसी एक मनुष्य की याददाश्त पर निर्भर रहने को तैयार नहीं था। क्योंकि उसने जल्दी ही जान लिया था कि भूलना मनुष्य का स्वभाव है इसलिए वह जल्दी ही बातों को भूल जाता है। जब कोई कहानी बार-बार कही जाती है तो वह मूल कहानी की तुलना में काफी बदल जाती है। धार्मिक गाथाओं तथा महत्वपूर्ण कथाओं में ऐसा बदलाव कभी नहीं आना चाहिए, नहीं तो उनका महत्व कम हो जाएगा। इसी आवश्यकता को देखते हुए, अर्थ को अधिक सुनिश्चित करने के

बौद्ध ग्रंथों में लिखा है कि बुद्ध के सिद्धांतों को सन् 88 ई. पू. में श्रीलंका में स्वर्णपत्रों पर उत्कीर्णित किया गया था और भारत में सम्राट कनिष्क के शासन काल (ईसा की पहली सदी) के दौरान मथुरा में ताम्रपत्रों पर अंकित किया गया था। आज वे सब लुप्त हो चुके हैं। पर बहुत आरंभिक काल से ही बौद्ध मत की शिक्षाओं से अंकित सोने-चाँदी की कुछ ऐसी वस्तुएँ आज भी पाई जाती हैं जो शायद स्तूपों में रखी गई थीं या मठों अथवा ऐसे ही धार्मिक प्रतिष्ठानों की नींव में गाड़ी गई थीं।

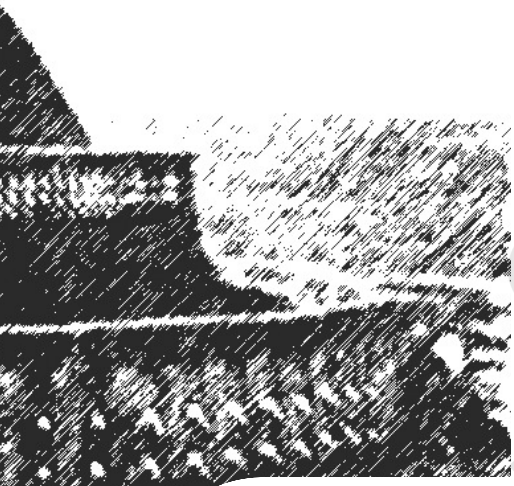

संगौरा (स्तूप)

© NCERT not to be republished

ग्राफ़िक डिज़ाइन – एक कहानी

चित्र 6.1 अजीत गढ़

उद्देश्य से सही क्रम घटना संबंधी विचारों को याद करने के लिए चित्र आरेखों का प्रयोग किया जाने लगा।

किसी महत्वपूर्ण घटना या अनुभव की याद में शंक्वाकार स्मारक बनाना एक पुराना रिवाज रहा है। पत्थर या शिलाखंडों को इकट्ठा करके उन्हें उन लोगों द्वारा बनाया जाता था जो उस घटना-विशेष को भली-भाँति जानते थे। इसका उद्देश्य यह था कि जनजाति की आने वाली पीढ़ियाँ भी उस स्मारक के माध्यम से उस घटना को याद रखें। ऐसे स्मारक समय-समय पर बनाए जाते रहे हैं। उदाहरण के लिए, उत्तरी दिल्ली में अजीत गढ़ का स्मारक तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा उन सिपाहियों की याद में बनाया गया था जो 1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद हुए थे। बौद्ध स्तूप और ताजमहल भी स्मारक के उदाहरण हैं। आधुनिक काल में भी ऐतिहासिक या युगान्तरकारी घटनाओं की याद दिलाने के लिए अक्सर ऐसे स्मारक बनाए जाते हैं।

जैसे-जैसे जनजातियाँ बड़ी होती गईं और उनकी संख्या भी बढ़ती गई, अपनी व्यक्तिगत संपत्ति पर कोई पहचान चिह्न बनाना भी ज़रूरी हो गया। इसी तरह, मृतकों की समाधियों को चिह्नित करना भी ज़रूरी समझा जाने लगा जिससे कि उन्हें और अधिक लंबे समय तक याद रखा जा सके। गाय-बैल जैसी व्यक्तिगत संपत्ति पर भी उसके मालिक के निशान लगाए जाने लगे। प्रारम्भ में तो ये निशान भद्दे ही होते थे पर आगे चल कर इन्होंने भावचित्र या भावलेख (ideoagram–ब्रांड या ट्रेडमार्क) होने का रूप ले लिया। आज के व्यापार-चिह्न उसी आरंभिक प्रणाली के विकसित रूप हैं। समाधियों, भूखंडों, स्तंभों, चौकियों आदि में पत्थर या धातु पर अंकित लेख लगाए जाने लगे। जनजाति के निवास स्थानों एवं शिविरों के नक्शे चित्रमय शैली में लिखे जाने लगे। ज्यों-ज्यों उनकी विशिष्टताएँ बढ़ती गईं त्यों-त्यों उनके विस्तार को छोड़कर चित्रों व प्रतीकों का स्थान आकृतियों ने ले लिया।

ग्राफिक कला की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि छपाई या मुद्रण की यांत्रिक प्रक्रिया के द्वारा बड़ी तेज़ी से उसकी एक-जैसी अनेक प्रतियाँ तैयार की जा सकती हैं। इस व्याख्या को यदि और आगे बढ़ाया जाए तो इसके अन्तर्गत औद्योगिक काल के पूर्व की वे सभी छपाइयाँ आ जाती हैं जो अनेक प्रकार की उभरी सतह से छाप लगाने (रिलीफ प्रिंट) में दृष्टिगोचर होती हैं। ये छपाइयाँ

चित्र 6.2 वृष मुद्राएँ

मुद्राओं, सिक्कों और इसी प्रयोजन के लिए ढाली गई सतहों पर की जाती थीं। ऐसी मुद्राओं आदि का प्रयोग प्राचीनतम भारतीय सभ्यता में किया गया जो विशेष रूप से सिंधुघाटी के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा नामक स्थानों पर पाई गई। आगे चलकर, अक्षरीय चिह्नों को तसवीरों से अलग कर दिया गया।

इन युगों के दौरान, चित्राक्षरों की आकृति से लेखन कला का विकास हुआ और फिर आगे चल कर उत्कीर्ण लेखों की आकृतियों को सुलेखन कार्य से प्रेरणा मिली। ऐसा प्रतीत होता है कि एक तरह की चक्रीय प्रक्रिया चलती रही। इस प्रक्रिया की पुनरावृत्ति उस समय भी होती है जब हम सरलता से याद करने के लिए वर्णमाला के किसी संकेत का ध्वनिक अर्थ किसी बच्चे को समझाते हैं। यह पद्धति समान रूप से सर्वत्र अपनाई जा रही है, केवल इसलिए कि आकृति अक्सर विचार से पहले दिमाग में आती है। वस्तुत: भारत में 'एल्फाबेट' को वर्णमाला यानी रंगों की माला कहा जाता है और उसका यह नाम रंगीन मुहरों/मुद्राओं की छापों के आधार पर रखा गया है जिनका प्रयोग प्राचीन भारत में शिक्षा देने के लिए किया जाता था।

चित्र 6.3 कुतुबमीनार के पास स्थित अशोक स्तंभ पर उत्कीर्ण लेख

ध्वनि प्रतीक आगे चलकर रूप में अधिकाधिक सरल होते गए। बदलते हुए अक्षर शनैः शनैः ध्वनि प्रतीकों की एक पूर्ण माला के रूप में विकसित हो गए, जिसे अब वर्णमाला कहा जाता है।

ईसा पूर्व पाँचवीं सदी तक आते-आते, प्राचीन भारतीय वैयाकरणों ने संस्कृत भाषा की ध्वनिक/स्वनिक प्रणाली का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण कर लिया था। उन्होंने अपनी वर्णमाला के अक्षरों/वर्णों को एक पूर्ण तार्किक प्रणाली में यानी व्यंजनों को स्वरों के पहले व्यवस्थित कर लिया था। अक्षरों को उनके उच्चारण स्थान के आधार पर कई वर्गों में विभाजित कर लिया था; जैसे-तालव्य वर्ग यानी वह ध्वनि जिसके उच्चारण में जिह्वा मुँह में कठोर तालु तक या उसके पास तक उठती है; कंठ्य वर्ग यानी घोष तंत्रिकाओं से उच्चरित ध्वनियाँ; मूर्धन्य वर्ग (जिनके उच्चारण में जीभ का सिरा ऊपर उठकर थोड़ा पीछे की ओर मुड़ता है); दंत्य वर्ग (जिनके उच्चारण में जीभ का सिरा आगे के ऊपरी दाँतों से छूता है या उनके निचले हिस्से तक पहुँचता है); औष्ठ्य वर्ग (जिनका उच्चारण करने में दोनो होंठ आपस में मिलते हैं, जैसे प, फ, ब)। संभवत: उन्हें यह सफलता लेखन की सहायता के बिना ही मिल गई थी, इसलिए लिखित वर्णमाला की शुरूआत होने पर उन्हें ध्वनियों से प्रतीकों का मेल बैठाने या संबंध जोड़ने में कोई कठिनाई नहीं हुई। सम्राट अशोक के शिलालेखों आदि में ईसा पूर्व तीसरी सदी में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि (देव लिपि) उपमहाद्वीप में सर्वत्र पाई जाती है। भारत में प्रचलित लगभग सभी भारतीय लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से ही विकसित हुई हैं। मध्य एशिया, तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रचलित उसकी उपशाखाएँ, खरोष्ठी को छोड़कर, अरामाइक लिपि से निकली थीं जो उत्तर-पश्चिम भारत में कुछ सदियों तक प्रयोग में लाई जाती रही थीं।

चित्र 6.4 भारतीय वर्णमाला

भारत में पुस्तक की आरंभिक संकल्पना किसी पेड़ की छाल के चपटे टुकड़ों या पत्तों के संग्रह के रूप में की जाती थी जिसे आवरणों के बीच किसी डोरी या धागे से

© NCERT not to be republished

चित्र 6.5 एक धातु-लेख

पिरोया जाता था। इसी प्रकार, दक्षिण भारत की सभी पांडुलिपियाँ पत्तों पर लिखी हुई होती थीं। लिखने के लिए पहले इन पत्तों को लोहे की पैनी कलम से उत्कीर्णित किया जाता था। इस प्रकार उत्कीर्ण किए गए पत्तों पर आमतौर पर काजल से बनी हुई स्याही पोती जाती थी, फिर उन पत्तों को धूल से साफ कर लिया जाता था। इस प्रक्रिया में उत्कीर्णित अक्षरों पर स्याही लगी रह जाती थी, जिससे उस पर लिखा गया पाठ देखा और पढ़ा जा सकता था। चूँकि ताड़ के पत्तों पर सीधे तौर पर लिखना मुश्किल होता था इसलिए उत्कीर्णन का तरीका ही ऐसा तरीका था जिसे दक्षिण भारत में काम में लिया जा रहा था, जबकि उत्तर भारत में आमतौर पर लिखने के लिए ताड़पत्र का प्रयोग व्यापक रूप से अपना लिया गया था।

आगे चल कर भारतीयों ने जब यह महसूस किया कि ताड़पत्र या भोजपत्र पर लिखी सामग्री बहुत समय तक नहीं टिकती, तब उन्होंने अभिलेखों के लिए शिलापट्टों और धातुपत्रों का प्रयोग शुरू कर दिया जो सदा के लिए सुरक्षित रह सकते थे। ईसा-पूर्व तीसरी सदी से ही अभिलेखों के लिए शिलाखंडों का इस्तेमाल शुरू हो गया था। किसी खास अवसर पर इनका प्रयोग किसी राजसी लेखक द्वारा अपनी साहित्यिक तथा सामरिक कुशलता का प्रदर्शन करने के लिए किया जाता था। बौद्ध धर्म के ग्रंथों को अक्सर धातु की पट्टिका या चद्दरों पर उकेरा जाता था और फिर पट्टिकाओं या चद्दरों को तालपत्रों की पांडुलिपि की तरह पट्टों के बीच मजबूत धागे में पिरोकर रखा जाता था। शिलालेखों की तुलना में ताम्र-शासन (ताम्रपत्र पर अंकित आदेश) अधिक व्यवहार में थे। इन ताम्र-शासनों के ज़रिए राजा लोग मुख्यमंत्री या मुख्य कार्याधिकारी के माध्यम से लोगों को अनुदान में ज़मीन दिया करते थे। इन ताम्रपत्रों के कुछ उदाहरण चौथी सदी से आज तक भी उपलब्ध हैं। ये अभिलेख, उत्कीर्ण करने के लिए अयस्कार (ताम्रकार) को दिए जाने से पहले किसी कपड़े, भोजपत्र या तालपत्र पर अंकित किए जाते थे, फिर अयस्कार उन्हें देखकर तालपत्र पर उनकी नकल उकेरता था। कपड़े या भोजपत्र

© NCERT not to be republished

अथवा तालपत्र पर तैयार की गई मूल प्रति शाही अभिलेखागार में सुरक्षित रखी जाती थी। और ताम्रपत्र अनुदान लेने वाले को सौंप दिया जाता था।

अयस्कार मूल पत्रों या दानपत्रों के अक्षरों की ही नहीं, बल्कि उनके संपूर्ण रूप एवं आकृति की नकल तैयार करते थे। मूल पाठ को लम्बाई के समानांतर उकेरा जाता था। सामान्यतया संपूर्ण मूल पाठ को उकेरने के लिए कई पत्रों की ज़रूरत पड़ती थी और वे आमतौर पर एक पोथी के आकार में होते थे। बाद में उन पत्रों में छेद करके डोरी से पिरोकर पुस्तक का रूप दे दिया जाता था और प्रामाणिकता के लिए उन पर राजकीय मोहर लगा दी जाती थी। यह मोहर काँसे से ढली होती थी। उत्तर भारत के कुछ राजघराने लंबे आकार के एक बड़े पत्तर या चद्दर पर अनुदान पत्र अंकित करना अधिक पसंद करते थे। ऐसी चद्दरें सुरक्षित रूप से राजकीय अभिलेखागार में रखी जाती थीं। लेकिन कभी-कभी अनुदान में दी गई भूमि की सीमाओं पर भी गाड़ दी जाती थीं। वे विशेष रूप से महत्वपूर्ण होती थीं क्योंकि वे ही भूमि-धारण का स्थायी अभिलेख मानी जाती थीं। कभी-कभी उनमें पुराने महत्वपूर्ण ब्योरों को निकाल कर नए ब्योरे डाल दिए जाते थे। लेकिन बाद वाली सदियों में तो नकली अनुदानपत्र तैयार करने का धंधा आम हो गया था। चीन, जापान और कोरिया में लेखन के ध्वनिक रूपों का कोई 2000 वर्ष से भी अधिक समय तक चलन रहा है। आज भी चेरी के उत्कीर्णित काष्ठ ठप्पों से अनेक रंगों में ऐसे सुंदर छापे (प्रिंट) तैयार किए जाते हैं।

चित्र 6.6 कीलाकार लेखन

एक ओर जहाँ चीन में मुद्रण तथा कागज़ निर्माण की कला काफी उन्नत थी,

चित्र 6.7 चित्रलिपि या चित्रात्मक लेखन

© NCERT not to be republished

वहीं दूसरी ओर मध्य-पूर्व यानी पश्चिमी एशिया के लोग शिलाओं और मिट्टी की पट्टियों पर अपने अभिलेख उकेर रहे थे जिनके अक्षर कीलाकार होते थे। यह कीलाक्षर लेखन मिस्र में भी प्रचलित था जिसकी शुरूआत करने का श्रेय काल्डियन लोगों को जाता है।

मिट्टी की पट्टियों और मोहरों पर कीलाकार लेखन के सुंदर उदाहरण सर्वप्रथम मेसोपोटामिया में पाए गए थे। कीलाक्षर लिखावट मिट्टी की पट्टियों और बेलनों पर और असीरिया तथा बेबीलोन के विशाल स्मारकों पर उकेरी गई थी। चूंकि ये सारे देश पश्चिमी एशिया में स्थित हैं, इसलिए यह संभव है कि इन्हें प्रयोग करने का विचार उन्होंने चीनी लोगों से ही प्राप्त किया हो। मिट्टी की पट्टियाँ शिलापट्टियों से हलकी होती थीं, इसलिए उन्हें लाना-ले जाना या सँभालकर रखना आसान था। उन पट्टियों पर उत्कीर्णन तीखी नोक वाले औज़ारों या कीलों से किया जाता था। इसीलिए इन पट्टियों को 'कीलाकार' नाम दिया गया है।

चित्र 6.8 लैटिन भाषा का सुलेखात्मक अभिलेख

चित्रलिपि (जिसमें शब्द के लिए एक निश्चित प्रतीक का प्रयोग किया जाता है) आरंभिक अवस्थाओं की लेखनकला का एक अन्य रूप है। चित्रलिपि का प्रयोग पहले केवल सजावटी लेखन के लिए ही किया जाता था। शब्दों के सर्वाधिक सुंदर चित्रात्मक रूपों का प्रयोग आरंभिक मिस्रवासियों द्वारा कब्रों, स्तंभों, भवनों, मंदिरों, राजमहलों और ऐसे ही अन्य स्थानों पर किया जाता था जहाँ अभिलेख या संचार के लिए इन्हें उत्कीर्ण करने की आवश्यकता होती थी। अंग्रेज़ी का *हायरोग्लाइफिक* (hieroglyphic) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों (hieros यानी पवित्र और glyphic यानी उत्कीर्ण करना या उकेरना) से मिलकर बना है। आगे चलकर लेखन की कला को यांत्रिक साधनों या तकनीकी उपकरणों के बंधन से मुक्त कर दिया गया और इस प्रकार सुलेखन कला (calligraphy) का विकास हुआ।

चित्र 6.9 चीन की सुलेखन कला का नमूना

सुलेखन कला

हाथ से सुंदर लिखने की कला को सुलेखन कला कहा जाता है। एक समय था जब सुलेखन कला चीन और जापान में अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गई थी। इस्लामी कला और परंपरागत भारतीय कला में इस दिशा में निश्चित रूप से कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हुईं।

हाथ की लिखावट शुरू होने से पहले पत्थर या धातु में किसी तीखे औज़ार से कटाई करके अक्षर लिखे जाते थे इसलिए सुलेखन कला का विकास औज़ार से काटे या उकेरे गए अक्षरों के स्वरूप से प्रभावित हुआ। ऐसा माना जाता है कि कोणीय अक्षर शैली पुरालेखों तथा शिलालेखों से निकली थी और फिर वह गोलाकार अक्षरों में परिवर्तित हो गई। रोमन काल की यूनानी पांडुलिपियों (papyri) में अक्षरों के विविध रूप पाए जाते हैं परन्तु उनकी द्रष्टव्य विशेषता है अक्षरों की गोलाई और उनकी लिखावट की निरंतरता और नियमितता।

यूरोप में अक्षरों को हाथ से लिखने की शैली दो तरह की होती है। एक को बृहदक्षर (uncial) शैली और दूसरी को प्रवाही लेखन (cursive) शैली कहा जाता है। पहली शैली साहित्यिक कृतियों में काम में ली जाती है जबकि दूसरी

© NCERT not to be republished

दस्तावेज़ और पत्र लिखने में। इन दो प्रमुख शैलियों से आगे चलकर कई उप-शैलियाँ निकल आईं और प्रयुक्त होने लगीं। लेकिन सुलेखन कला भी पुरालेखों की शैली से ही विकसित हुई जिसे बृहदक्षर (majuscule) शैली कहा जाता है; इसमें बड़े (capital) अक्षरों का इस्तेमाल किया जाता है। ईसा की पहली सदी आते-आते प्रवाही शैली जल्दी-जल्दी लिखने की लघ्वाक्षर (minuscule) शैली में बदलने लगी थी जिसमें प्रवाही यानी घसीट अक्षर लिखे जाते थे, और इसी प्रक्रिया में बहुत-से बड़े अक्षर शनैः शनैः छोटे अक्षरों में बदल गए। पुनर्जागरण काल में, कलाकारों तथा लिपिकों ने रोमन अभिलेखों के ज्यामितीय आकार के अक्षरों को अपना लिया। वे सुंदर गोल अक्षर रूपों के आविष्कारक थे और ये ही अक्षर रूप आज मुद्रण में प्रयोग किए जाने वाले रोमन टाइप के आधार बने। धीरे-धीरे सुलेखन कला ने टाइप-मुद्रण (typography) के लिए रास्ता तैयार कर दिया और मुद्रण कला ने हस्तलेखन का स्थान ले लिया।

प्रश्नावली

1. तसवीरी आरेखों (picture diagram) के अस्तित्व में आने से पहले संचार यानी विचारों के आदान-प्रदान के क्या साधन थे?
2. लिखित लिपि की आवश्यकता क्यों पड़ी? अपने शब्दों में उत्तर दें।
3. लिपि के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।
4. प्रारंभिक पुस्तकें कैसे तैयार की गई थीं?
5. सिंधु घाटी की लिपि के बारे में एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें और यह बताएँ कि आकृति के साथ उसका क्या संबंध था?
6. आगे चलकर सुलेखन की कला में आकृति का किस प्रकार उपयोग किया गया?

प्रायोगिक

1. चीन की सुलेखन शैली का प्रयोग करते हुए एक डिज़ाइन तैयार करें।
2. रोमन वर्णमाला के साथ आकृतियाँ तैयार करें।
3. किसी भाव-विशेष को व्यक्त करने वाले अभिव्यंजनात्मक शब्दों को लिखें। उदाहरण; अंतरिक्ष, तूफान, विराम, संबंध आदि।
4. सुलेखन कला की शैली में अपने बारे में और अपने परिवार के बारे में एक पृष्ठ लिखें।
5. भिन्न-भिन्न भाषाओं/संस्कृतियों की सुलेखन शैलियों का उदाहरण सहित परिचय दें।
6. अपने आस-पास लिखी गई किसी लिपि के अक्षरों को पहचानें और उनका प्रयोग करते हुए अपना नाम रोमन या देवनागरी लिपि में लिखें।
7. 'भाषा अधिगम' की पाठ्यपुस्तक के आवरण का डिज़ाइन तैयार करें।
8. अंग्रेज़ी या किसी अन्य भाषा के अक्षर, शब्द तथा वाक्य को ग्राफिक आकृतियों का प्रयोग करते हुए प्रस्तुत करें।

© NCERT not to be republished